हिन्दी कहानियों में विकलांग जनों के जीवन की छवियाँ

डॉ. सुमित्रा महरोल

समाज में होने वाले स्पन्दनों की आहट साहित्य में आसानी से सुनी जा सकती है। विकलांग व्यक्तियों के जीवन, समाज में उनकी स्थिति, समाज का उनके प्रति रवैया, उनके संघर्ष, उनकी पीड़ा, उनके शोषण को केन्द्र में रखकर अनेक कहानियों का सृजन हिन्दी के कहानीकारों ने किया है। साहित्य में सामान्यतः दो तरह की दृष्टियाँ इस क्षेत्र में दृष्टिगत होती है - पहली, समाज का इस वर्ग के प्रति दृष्टिकोण और दूसरा किसी परिवार में विकलांग व्यक्ति की उपस्थिति के कारण पैदा हुए बदलाव। इसके अलावा विकलांग जनों की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और भावनात्मक स्थितियों पर केन्द्रित कहानियों का सृजन भी कई कहानीकारों ने किया है।

"किसी दुर्घटना, रोग, पोलियो अथवा जन्मजात कारणों से शरीर में उत्पन्न दोष, अंग विकृति अथवा शरीर के किसी भी अथवा कई अंगों के अकार्यशील होने को मोटे तौर पर विकलांगता, अपंगता, शारीरिक विकृति कहा जाता है।"[1]

"इस प्रकार शारीरिक अथवा मानसिक अक्षमता विकलांगता है। यह व्यक्ति के मन में निराशा उत्पन्न करती है, हीनता की भावना भरती है, लेकिन यदि उसे उपयुक्त वातावरण एवं सम्यक् प्रेरणा प्रोत्साहन मिले तो वह उपलब्धियों के शिखर पर भी आसीन हो सकता है। अक्सर यह देखा गया है कि एक अंग यदि निशक्त है तो दूसरा अधिक सशक्त हो जाता है,

जरूरत होती है कि उस दूसरे अंग को अधिक सचेष्ट क्रियाशील एवं कार्यकौशल सम्पन्न बनाया जाए। जायसी, सूरदास, महाराजा रणजीत सिंह, विनोद कुमार मिश्र, मिल्टन, हेलेन किलर, स्टीफन हाकिन्स, राजेन्द्र यादव आदि ने विकलांगता के बावजूद जो महान उपलब्धियाँ अर्जित की है, उसकी चकाचौंध से सारा संसार जगमग है। यह इसलिए संभव हो सका कि उन्होंने अपनी भीतरी शक्ति को पहचाना और उसे सचेष्ट तथा क्रियाशील बनाया। महाकवि सूरदास को यदि वल्लभाचार्य ने यह नहीं कहा होता "सूर होके काहै घिघियात हो, कुछ भगवत भजन कर" तो शायद वे सूरसागर के रचियता नहीं बने होते।"[2]

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि भारतीय समाज विकलांगों के लिए ऐसा माहौल नहीं बना पाया है कि वह कुंठाहीन हो अपने दूसरे अंग को अधिक क्रियाशील या सचेष्ट बना अपना और दूसरों का जीवन सुखकर बना पायें। भारतीय परिवेश में अधिकतर उन्हें उनके हाल पर मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। इस समुदाय के कुछ चुनिंदा लोग ही विपरीत परिस्थितियाँ होने के बावजूद अपनी उत्कट जिजीविषा के दम पर कुछ कर गुजर पाने में सफल हो पाये है.! "आज भी यह प्रश्न अनुत्तरित है कि समाज के इस समुदाय को ससम्मान समाज में जीवित रहने का विकल्प कैसे दिया जाए। यह प्रश्न उस समय और ज्यादा जटिल हो जाता है, जब हम देखते है कि स्वस्थ लोगों की मानसिकता विकलांगों के प्रति मात्र दया की ही होती है। वस्तुतः एक विकलांग व्यक्ति में उत्पन्न होने वाले फ्रस्ट्रेशन और निराशा भाव के लिए

समाज के स्वस्थ लोग ही उत्तरदायी है, जो किसी अपंग को यह अहसास दिलाने के अपराधी है कि वह शारीरिक या मानसिक तौर पर विकृत है। सहानुभूति में व्यक्त किए गए सुंदर शब्दों के माध्यम से हम उसमें हीनता का भाव जागृत करते हैं, परिणामत् हम पूण्य के परदे में इस समुदाय के प्रति बहुत बड़ा पाप कर बैठते हैं। हम इस सच्चाई को स्वीकार करने का साहस नहीं जुटा पाते कि अपंग दया का नहीं, सम्मान का, समानता का, सहयोग का और प्यार का सच्चा अधिकारी है। यदि ऐसा हो जाए, तो वह लोग - जिनकी विकलांगता में उनका अपना कोई हाथ नहीं है, स्वयं हमारे बराबर खड़े होने की शक्ति प्राप्त कर सकेंगे।"[3]

भारत में विकलांगों के साथ होने वाले शोषण का स्वरूप बहुस्तरीय है। कहीं वह बाह्य है आसानी से देखा जा सकता है तो कहीं भावनात्मक और मानसिक है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में, अनेक परिस्थितियां में, विकलांगों के साथ होने वाले अन्याय को उकेरती हुई कहानियाँ हिन्दी साहित्य में लिखी गई हैं।

वरिष्ठ लेखिका सिम्मी हर्षिता की कहानी "अनियंत्रित" का केन्द्रीय पात्र मनु शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से विकलांग है। मनु जब अपनी माँ के गर्भ में था तो उसकी माँ ने गर्भ में कन्या होने के भ्रम में गर्भ गिराने के अनेक नुस्खे आजमाए, गर्भ तो नहीं गिरा, पर माँ के कृत्यों का दंड अबोध मनु को विकलांगता के रूप में भुगतना पड़ा। अब विकलांग मनु का अस्तित्व परिवार के लिए भय और चिन्ता का सबब बन गया। घर के लोगों

को प्रतीत होता है कि मनु घर के सम्मान पर गहरे दाग के समान है, इस कारण घर में किसी अतिथि के आने पर अबोध बालक मनु को पकड़ या घसीट कर छोटे से स्टोर रूम में बंद कर दिया जाता है। बंद कर दिए जाने के विरोध में मनु अंधाधुन्ध रोता है। रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बंध जाती है और स्टोर रूम में गर्मी के कारण वह पसीने से सराबोर भी हो जाता है। ऐसी निर्ममता, वह भी परिवार के अबोध असहाय बालक के प्रति अकल्पनीय सी लगती है।

कभी-2 घर का गेट खुला पाकर मनु चल ना पाने के बावजूद किसी तरह घिसट-2 कर घर से बाहर आ जाता तो "पास पड़ोस के शैतान बच्चे उसे घेरकर खड़े हो जाते। कोई उसके बाल नोंचता, कोई उसका चम्मच ले लेता और दूर से चम्मच दिखा-2 कर मनु को और आगे आने के लिए उकसाता। मनु अपने सामने बच्चों को पाकर खुशी से इधर-उधर सिर घुमाने लगता तो बच्चे ताली बजाकर पागल-पागल चिल्लाते और हँसने लगते।"[4]

कभी-कभी "मनु घर में आने जाने के मार्ग पर अपने कपड़ो और बालों में मिट्टी और तिनके लपेटे बैठा होता और उसके बड़े भाई व्यक्तता और तेजी से उसके पास से कभी अपने को बचाकर और कभी उसे बिना देखे निकल जाते। भाइयों को उसे अपना भाई कहने में संकोच होने लगा था। मनु आते-जाते बूटो की आवाज को जिज्ञासा से सिर घुमा-घुमा कर देखने सुनने लगता, पर बूटो को उसके प्रति कोई उत्सुकता, जिज्ञासा और आशा

नहीं रह गई थी। वह जैसे लकड़ी का घोड़ा था - पालिश उतरा और टूटा फूटा खिलौना - अपने उपयोग का समय बीत जाने पर एक कोने में बेकार उल्टा-सीधा पड़ा हुआ। घर में उसका होना अब पूरी तरह व्यर्थ और अनावश्यक था और फिर भी वह था। जन्म लेने से पूर्व की उसकी अनावश्यकता और अस्वीकार उसके जीवन पर फिर हावी हो उठा।"[5] मनु के प्रति परिवार का यही उदासीन और उपेक्षित रवैया असमय उसकी मौत का कारण बनता है। कहानी बताती है कि उपेक्षा, अवमानना और अपमान के दंश विकलांग व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने परिवार से ही मिलते है।

"हमारे व्यवहार में एक अर्जित प्रवृत्ति विकलांगता से ग्रसित व्यक्ति को दुत्कारने की होती है, कभी-कभी मानवीय संवेदनाओं को ताक पर रखकर इनकी विकलांगता में मनोरंजन का आधार ढूँढ़ा जाता है क्या मनोरंजन का यह तरीका सभ्य समाज पर तमाचा नहीं।"[5]

"विकलांगों की जरूरतों, योग्यताओं, आशाओं के बारे में हमारी अज्ञानता और अरूचि ही अक्सर इन्हें समाज पर बोझ बना देती है।""[6]

"विकलांग व्यक्ति का आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होना उसके आत्मविश्वास और आत्मसम्मान को बढ़ाने की दशा में बहुत कारगर होता है। आर्थिक आत्मनिर्भरता विकलांग के लिए तो और भी आवश्यक है क्योंकि आमतौर पर विकलांगता अभिशाप मानी जाती है और इससे विकलांग व्यक्ति की कार्यक्षमता में कम लेकिन आत्मसम्मान और सामाजिक स्वीकार्यता का अधिक नुकसान होता है।" विनोद कुमार मिश्र

जी का यह कथन विकलांगों के जीवन व आर्थिक पक्ष पर सटीक सिद्ध होता है। 7.

किन्तु कई बार आर्थिक आत्मनिर्भरता के बावजूद इस समुदाय के लोगों की सामाजिक जीवन में स्वीकार्यता नहीं हो पाती और तमाम तरह की विषमताएँ और चुनौतियाँ यथावत बनी रहती है। जैसे कुलदीप बग्गा की कहानी "पोलियो" में हर तरह से योग्य और सक्षम, पर पोलियो से पीड़ित लड़की मणिका के विवाह का प्रसंग लिया गया है। मणिका का प्रेमी मनीष उससे विवाह के लिए राजी था पर उसकी माँ को विकलांग बहू स्वीकार्य नहीं थी। मनीष माँ का विरोध नहीं कर पाता। कुछ समय बाद मणिका का विवाह प्रीतम से हो जाता है। प्रीतम के शरीर पर सफेद दाग है, मणिका को उनसे कोई आपत्ति नहीं, पर आसमान से जमीन पर वह तब आ गिरती है जब उसे पता चलता है उसका पति इंपोटेट है। पति द्वारा धोखे की शिकार मणिका किसी और से संबंध बना संतानवती होती है। यहाँ विचारणीय यह है कि इस तरह संतान प्राप्ति के लिए उसे विवश किसने किया? समाज ने ही उसे इस प्रकार का अनैतिक समझौता करने को मजबूर किया। इस पूरे प्रकरण में दोषी हुए बिना भी, अपराध बोध और अंतर्द्वंद निस्संदेह आजीवन मणिका को ही सालता है। पर विचारणीय प्रश्न यह है कि यह सब हुआ क्यों? वह तो निश्छल मन से सिर्फ पति को ही समर्पित होना चाहती थी, पर उसका पति उसे अंधेरे में रखता है, अपनी नंपुसकता के बारे में विवाह पूर्व मणिका को कुछ नहीं बताता। कालान्तर में मणिका यदि वह रास्ता न अपनाती तो

विकलांगता के साथ-साथ बाँझ होने का अपमान और पीड़ा भी साथ-2 झेलती। मनीष की सोच थी कि विकलांगता के कारण मणिका के पास उससे विवाह करने के अलावा अन्य कोई विकल्प भी तो नहीं है। मणिका की यौनेच्छा यहाँ बेमानी है। यह मान लिया गया है कि चूँकि वह विकलांग है तो उसकी इस किस्म की इच्छा होगी ही नहीं, मने एक अंग के अक्षम होने पर उसकी समस्त सहज स्वाभाविक मानवीय इच्छा आकांक्षाओं का स्वतः ही शमन हो गया। कितनी क्रूर है समाज की ऐसी सोच।

विकलांग व्यक्ति के जीवन, उसकी व्यथा, उसकी चुनौतियों, उसकी विभिन्न जीवन दशाओं को उकेरती, अपने साहित्यिक कौशल, विस्तार व अनूठी शैली के कारण विशिष्ट बन पड़ी एक अन्य कहानी है "रोशनी से दूर"। कहानीकार "छत्रसाल" ने इस कहानी को लिखा है। इस कहानी का नायक बचपन में ही अपने पैरों की शक्ति खो चुका है। अपनी बेवा माँ और बूढ़ी नानी का एकमात्र आधार कथा नायक स्वयं जीवन भर के लिए पोलियो के कारण लाचार हो जाता है। किन्तु फिर भी वह हार नहीं मानता, अपनी शिक्षा जारी रखता है, व जीवनयापन के लिए किताबों की एक दुकान खोल लेता है। किन्तु समाज की उपेक्षा, अवमानना और अनदेखी उसे आत्मनिष्ठ बना घुट-2 कर जीने के लिए विवश कर ही देती है। इसी कहानी में आया एक अन्य प्रसंग अत्यंत हृदयस्पर्शी है जिसमें 12 वर्ष का एक किशोर अचानक अपने दोनों पैरो व एक हाथ से विकलांग हो जाता है।

“वे मुझे एक कमरे में ले आये, जहाँ एक तरफ पुराने डिजाइन का एक आबनूसी पलंग था। दूसरी तरफ ऊँची पुश्त वाली दो कुर्सियां ।”

“पलंग पर हमारी ओर पीठ किये लड़का लेटा हुआ था और बड़ी तन्मयता से खिड़की के बाहर खेलते हुए बच्चों को देख रहा था। हमारे आने की उसे खबर तक नहीं हुई।

“देखो तो बेटा, कौन आया है? उन्होंने कुछ ऊँची आवाज में कहा सोचा कहूँ - जब तुम कुछ ओर बड़े होगे, तो महसूस करोगे कि तुम्हारे साथ कितना खौफनाक मजाक किया गया है। तुम्हारे आसपास की सभी चीजें गतिशील होंगी और तुम एक स्थान पर बँधे होगे। अच्छा हुआ उस वक्त ये सब मैं बोला नहीं।”

“हमारे साथ एक लड़का पढ़ा करता था। उसकी एक टाँग कट चुकी थी सभी उसे छेड़ते थे। कोई उसे थप्पड़ मारकर भाग जाता, तो कोई उसकी बैसाखी छीनकर उससे कुछ दूर खड़ा होकर उसे चिढ़ाता। वह कभी गुस्से में अपने बाल नोंचता, डेस्क पर मुक्के मारता, तो कभी रो पड़ता।”[9]

बैसाखी के बिना चल फिर ना पाने वाला असहाय रोने के सिवा तब कर भी क्या सकता था। कुदरत के कारण विवश और असहाय हो चुकों के साथ इस तरह का व्यवहार यह सोचने को विवश करता है कि क्या वास्तव में हम किसी सुसंस्कृत और सभ्य समाज में रह रहे है।

"रोशनी से दूर" कहानी में उक्त किशोर के विवश माता-पिता बालक की शोचनीय स्थिति को जानकर भी एक-दूसरे से इसे छिपाने का यत्न करते है। यह सोचकर की वास्तविकता जानकर दूसरा व्यक्ति कहीं दुखी न हों। विकलांग बालक के साथ-साथ उसके परिवार के दुख को अभिव्यक्त करती यह कहानी पठनीय होने के साथ-2 पाठक से तादात्म्य स्थापित कर उसे भी वेदना के सागर में गोते लगाने को विवश कर देती है।

नरेंद्र नागदेव जी की कहानी " समापन" में कई लेयर्स विद्यमान है। चल फिर बोल पाना तो दूर की बात करवट तक न बदल पाने वाले डेढ़ वर्षीय बबलू की अकथनीय पीड़ा कहानी में व्यक्त है "शायद उसकी रीढ़ की हड्डी में ही कुछ खराबी रही होगी, या और कुछ। उठाने पर उसके हाथ-पैर-गर्दन सब बेजान जैसे नीचे झूल जाते थे। आँखों की पुतलियाँ सीधी नहीं थी। हाथ-पैर कभी-कभी हिला लेता था।"[10]

शारीरिक व मानसिक तौर पर पूर्णतया विकलांग मात्र डेढ़ वर्ष के बबलू की अत्यंत चिन्तनीय दशा और पीड़ा का बस अनुमान ही लगाया जा सकता है। एक दिन उसके सिर पर कोई भारी बर्तन आ गिरता है। लहुलूहान बबलू इतना विवश है कि रोकर या चीखकर भी अपने माता-पिता को इस दुर्घटना के घटित हो जाने की सूचना नहीं दे सकता। माता-पिता उसे सोया जान घर के दूसरे हिस्से में होते है। काफी समय बीत जाने के बाद उन्हें इस बारे में पता चलता है, तब तक सिर पर लगी चोट के कारण खून में सराबोर

नन्हा बबलू एकाकी पड़ा असहनीय दर्द सहने के सिवा कर भी क्या सकता था। विवशता इतनी घनी है कि रो तक नहीं सकता था वो नन्हा मासूम "

"हम भीतर पहुँचे, तो वह पलंग पर पड़ा था। उसका सिर फूट गया था। बिस्तर और चेहरे पर खून था। पता नहीं कितनी देर से वह इसे भुगत रहा होगा। रोने के नाम पर तो उसके गले में महज एक दबी घरघराहट सी होती थी। वह हो रही थी। उसकी आवाज बाहर बैठे हम तक कैसे आती। चीख तो वह सकता ही नहीं था। इतनी यातना के बावजूद वह जिस स्थिति में पड़ा था, उसी में पड़ा रहने के लिए मजबूर था।"[11]

ऐसी अवश जिन्दगी से बबलू को मुक्ति भी उसका पिता ही दिलाता है। कहानी की गढ़न ऐसी है कि पाठक के मन में उस पिता के प्रति नकारात्मकता का भाव संचरित नहीं होता। संतान के लिए पलक पाँवड़े बिछाए दम्पत्ति को जब शारीरिक मानसिक तौर पर पूर्णतया विकलांग संतान पैदा होती है तो कैसे उनकी जिन्दगी एकदम से बदल जाती है। कैसे खुशी, उल्लास उनकी जिन्दगी से एकदम चूक जाते है और एक अव्यक्त उदासी निष्क्रियता, हताशा और बेगारी उनकी जिन्दगी को बिल्कुल नीरस, बेजान और बदरंग बना देती है इसका बेहद, खूबसूरती से अंकन प्रस्तुत कहानी में हुआ है। पिता के असमंजस, लाचारी, हताशा, निराशा, दुख का जैसा प्रस्तुतिकरण इस कहानी में हुआ है सामान्यतः देखने को नहीं मिलता। ऐसा नहीं कि उसे पुत्र से प्रेम नहीं - अत्यधिक प्रेम है तभी तो पुत्र की दशा में तनिक से सुधार की खबर सुनते ही वो उसके लिए पीतल की

घटियों वाली गाड़ी ले आता है। इलाज कराने में भी दोनों जन कोई कसर नहीं छोड़ते पर बबलू की बीमारी लाइलाज थी। वो कभी भी ठीक नहीं हो सकता था। बबलू के पैदा होते ही डॉक्टर ने यह उन्हें बता दिया था पर फिर भी वह प्रयास करना नहीं छोड़ते। प्रेम, असमंजस, निराशा, लाचारी की गर्त में डूबे विकलांग बालक के विवश पिता की लाजवाब कहानी है “”समापन”।

पालू खोलिया की कहानी “अन्ना” में अन्ना मिर्गी के दौरे पड़ने के बाद उसके परिवार की जीवन स्थितियों का अंकन लेखक ने इस कहानी में किया है। अन्ना का मिर्गी से ग्रस्त होना उसके पिता बसंत के लिए किसी सदमे से कम नहीं होता। परिवार की त्रासदी यहीं तक नहीं थमी थी। अन्ना के इलाज और दवा दारू में सारी जमा पूँजी खर्च हो जाती है, यहाँ तक कि हर महीने आने वाली पगार का भी बड़ा हिस्सा अन्ना पर खर्च होने लगता है। अचानक आन पड़ी इस विपत्ति के कारण बसंत की आर्थिक दशा बहुत ही खराब हो जाती है। परिवार एकदम से हाशिए पर आ जाता है। हालात इतने खराब होते है कि उन्हें अपनी कॉलोनी छोड़ एक निम्नस्तरीय बस्ती में जाकर रहना पड़ता है और उसी शैली का जीवन जीना पड़ता है। माता-पिता का पूरा ध्यान और ऊर्जा अन्ना में ही खप जाती थी इसका बुरा असर उनके दूसरे बच्चों टिंकू और तन्नी पर पड़ता है। वो दोनों अबोध अपने को उपेक्षित महसूस करने लगते है। उनकी शिक्षा और खान-पान भी प्रभावित होता है। टिंकू और तन्नी के पालन पोषण, खान-पान, शिक्षा के प्रति माता-पिता संतुलित नहीं रह पाते व यह अपराध-बोध भीतर ही भीतर उन्हें कचोटता

और तोड़ता रहता है। अन्ना के अलावा अन्य संतानों के प्रति अपने कर्त्तव्यों को ठीक से ना निबाह पाने की विवशता व अपराधबोध बसंत को प्रकृतिस्थ नहीं रहने देता व वह स्वयं दुविधा में जीते हुए कुंठाओं का शिकार हो जाते है। इस स्थिति में टिंकू व तन्नी की मासूम स्थिति और उनके प्रति अनजाने में हो जाने वाले अन्याय को कथाकार ने बड़ी जीवन्तता व शैलीगत कुशलता से उकेरा है।

इस प्रकार हिन्दी में कुछ कहानीकारों ने विकलांग व्यक्तियों के जीवन के विविध प्रसंगों को केन्द्र में रखकर मार्मिक कहानियों का सृजन किया है।

इन कहानियों में इस वर्ग के जीवन और स्थितियों का कारूणिक अंकन ही नहीं है अपितु यह कहानियाँ पाठक को झकझोरती है, मंथन करने को मजबूर करती है। इस वर्ग के प्रति अपनी सोच को पूर्वाग्रहों से मुक्त हो कुछ अधिक मात्रा में संवेदनशील होने का आग्रह इन कहानियों में विद्यमान है।

डॉ. सुमित्रा महरोल
(एसोसिएट प्रोफेसर)
श्यामलाल महाविद्यालय (सान्ध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली
मो. 9650 466 938
Email : drsumitra21@gmail.com

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Gupta (A) Guideline for Disable, p. 28, June 2005, Indore Publication.
2. साहित्य कुंज, डॉ. छोटे लाल गुप्ता, "हिन्दी साहित्य और विकलांग विमर्श", 1 मार्च 2019.
3. विकलांग जीवन की कहानियाँ, सम्पादक, गिरिरिज शरण अग्रवाल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 6.
4. वही, पृ. 150.
5. वही, पृ. 148.
6. Uber, Peter (A); Missmagining the Unimaginable, The Disability Paradox and Healthcare Decision Making 2005 (July Vol. 24 (4, SUPPL.) 557-562.
7. गुप्ता (आर.) गौरव गाथा, न्यू हिन्द पब्लिकेशन, (मई 2000), पृ. 54.
8. विकलांगता समस्याएँ व समाधान, विनोद कुमार मिश्र, पृ. 101, प्रकाशक जगतराम एंड संस, दिल्ली।
9. विकलांग जीवन की कहानियाँ, सम्पादक गिरिराज शरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 31.
10. ……. वही, पृ. 56.
11. ……. वही, पृ. 58.